निजी शिक्षण की नैतिकता

हैरी ब्रिजहाउस

लेखक परिचय :

यूनीवर्सिटी ऑफ विस्कॉन्सिन-मेडिसन में फिलोसॉफी ऑफ एज्युकेशन के प्रोफेसर, यूनीवर्सिटी ऑफ लन्दन के इन्स्टीट्यूट ऑफ एज्युकेशन में 2000-02 तक प्रोफेसर।

पुस्तक :

स्कूल च्वॉइस एण्ड सोश्यल जस्टिस, जस्टिस, द पॉलिटिकल फिलॉसॉफी ऑफ कॉस्मोपोलिटनिज्म, ऑन एज्युकेशन।

सम्पर्क :

5119 Helen C White Hall, 600 N Park st, Madison, WI 53706, USA

जो समाज शैक्षिक न्याय को समर्पित हो उसमें निजी शिक्षण के स्थान पर मैं चर्चा करना चाहता हूं। यद्यपि शुरुआत में ही यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि निजी शिक्षण का विरोध करने के कोई सैद्धान्तिक कारण नहीं हैं और शिक्षा के प्रावधान में राज्य का एकाधिकार हो इस विचार के पक्ष में तो कोई भी कारण नहीं है - फिर भी मैं कई अन्य लोगों की तरह निजी स्कूलों के प्रति उत्साहित नहीं हूं। शिक्षण के न्यायपूर्ण वितरण से उनके विचार कितने सुसंगत हैं यह भी विवाद का विषय है।

निजी शिक्षण के प्रति मेरा नजरिया शैक्षिक न्याय के विचार से तथा विभिन्न राष्ट्रीय व आंचलिक संदर्भों की प्रासंगिक संभावनाओं के आकलन से निर्देशित होता है। इसलिए, तमाम कारणों से जिनका खुलासा मैं बाद में करूंगा, मैं अमरीका में चल रही सार्वजनिक वित्त से पोषित वाउचर योजनाओं को एक भिन्न दृष्टिकोण से देखता हूं, जबकि यहां (इंग्लैण्ड में) नम्बर 10 में वाउचर योजना को लागू करने के विषय में जो अफवाहें हैं उनके प्रति मेरा नजरिया बिल्कुल भिन्न होगा।

तो सबसे पहले मुझे शैक्षणिक न्याय के केन्द्रीय मानदण्डों में एक का वर्णन कर देना चाहिए :

शैक्षणिक समानता का सिद्धान्त : जिन बच्चों के गुण व सीखने की इच्छा समान स्तर की हो उन सभी को शैक्षिक उपलब्धियों के समान अवसर मिलने चाहिए, फिर चाहे सामाजिक व्यवस्था में उनका प्रारंभिक स्थान कुछ भी क्यों न रहा हो।

मुझे लगता है कि शैक्षिक समानता का सिद्धान्त सच्चा है, यद्यपि यह अपूर्ण भी है। उदाहरण के लिए यह शैक्षिक समानता के सिद्धान्त में संगत है कि सबसे योग्य पर भारी संसाधन खर्चे जाएं और सबसे कम योग्यता रखने वालों पर लगभग कुछ नहीं या फिर इसका ठीक विपरीत भी उतना ही संगत होगा। मुझे अचरज होता है कि शैक्षिक न्याय का एक समग्र सिद्धान्त विभिन्न योग्यता स्तर वाले बच्चों पर खर्चे जाने वाले संसाधनों के अनुपातिक व्यय पर कुछ भी न कहता हो। फिर भी मुझे सिद्धान्त अपने आप में सही लगता है : कोई वक्तव्य सही हो सकता है यद्यपि उसमें वह सब शामिल न हो जो सही हो। इस बारे में मैंने दूसरे स्थान पर तर्क किया है, अतः यहां मैं सिर्फ इस बात पर ध्यान केंद्रित करूंगा कि शैक्षिक व्यवस्थाओं में निजी शिक्षण (स्कूलिंग) के स्थान पर हमें कैसे सोचना चाहिए और हमारी सोच के क्या परिणाम हो सकते हैं।

न्याय में शैक्षिक समानता का स्थान

यह सिद्धान्त केवल एक प्रथम दृष्टया सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त न्याय के एक मूल्य को अभिव्यक्त करता है, पर यह संभव है कि वह मूल्य अन्य मूल्यों से भी गढ़ा जा सके। दरअसल मैं सोचता हूं कि शैक्षिक समानता का सिद्धान्त अन्य मूल्यों से, खासकर परिवार की अखण्डता के सिद्धान्त से, पुष्ट होता है या गढ़ा जाता है। शैक्षिक समानता के सिद्धान्त के विरोधी अक्सर इसे खारिज करने के लिए इसका उपयोग करते हैं। पर इसे नकारने का यह कारण नहीं हो सकता।

उदाहरण के लिए कई सिद्धान्तविद् यह तर्क करते हैं कि माता-पिता को यह अधिकार है कि वे अपने बच्चों पर अपना धन इस प्रकार खर्चें जो शैक्षिक समानता के लक्ष्य को हासिल करने से संगत न हो (फ्राइड, 1978); दूसरे कहते हैं कि उन्हें यह अधिकार है कि वे अपने बच्चों के साथ ऐसी गतिविधियां करें जिसके प्रभाव स्वरूप वे असमान रूप से सुशिक्षित बन जाएं (लोमस्की, 1987); तो कुछ दूसरे कहते हैं शैक्षिक समानता लागू करने के प्रयास अपने बच्चों को लाभ दिलाने के माता-पिता के उत्प्रेरण को ही हतोत्साहित करेगा जिससे माता-पिता व बच्चों के आपसी संबंधों की गुणवत्ता में कमी आएगी (टूली, 2000)।

पर यह गौर करते हुए कि कोई सिद्धान्त किसी दूसरे से पहले आता है, यह मांग नहीं करता की दूसरे को नकारना भी आवश्यक बन जाए। परिवार की अखण्डता रॉल्स की तरह शाब्दिक प्राथमिकता (लैक्सिकल प्रायोरिटी) की मांग भी करती हो, तो भी यह सिर्फ इतना ही दर्शाता है कि शैक्षिक समानता की दिशा में होने वाले प्रयासों को केवल तब तक अनुमति दी जा सकती है, जब तक ऐसे प्रयास परिवार की अखण्डता का उल्लंघन नहीं करते, या अधिक बल देकर कहें तो उसकी सुरक्षा को खतरे में नहीं डालते। परन्तु शैक्षिक समानता को प्रोत्साहित करने के कुछ अप्रत्यक्ष उपाय परिवार की शाब्दिक प्राथमिकता के बावजूद समस्यात्मक नहीं लगते : उदाहरण के लिए आय व सम्पत्ति का समान पुनर्वितरण या सभी बच्चों के लिए शिक्षा के एक न्यूनतम स्तर को अनिवार्य बनाना। दरअसल औद्योगिक रूप से सर्वाधिक विकसित देशों में 5 से 16 वर्ष के आयु के बच्चों के लिए स्कूल में उपस्थिति कानूनी रूप से अनिवार्य है और उसकी सरकारी वित्त से निःशुल्क व्यवस्था हो यह लगभग अविवादित तथ्य है। जो चन्द लोग इन उपायों का विरोध करते हैं वे परिवार की एकनिष्ठता के आधार पर करते हैं।

शैक्षणिक समानता को प्रोत्साहित करने के किसी उपाय को अनुमति दी जाए अथवा नहीं यह तय करने में दो मुद्दे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं। पहला यह कि परिवार की अखण्डता किस दर्जे की प्राथमिकता पर है और दूसरा यह कि परिवार की एकनिष्ठता के सिद्धान्त की विषयवस्तु क्या है। इस, मूलतः दार्शनिक मुद्दे की, विस्तृत चर्चा करने का फिलहाल समय नहीं है। मेरी मान्यता है कि परिवार की एकनिष्ठता को ऊंचे दर्जे की प्राथमिकता दी जानी चाहिए, जो माता-पिता बच्चों को तमाम चीजें उपलब्ध करवाते हैं, जो मानव के पालन-पोषण के लिए बुनियादी हैं तथा किसी भी दूसरी संस्था द्वारा उपलब्ध नहीं करवाए जा सकते। किन्तु परिवारिक अखण्डता के आदर्श की विषयवस्तु, जो कई प्रकार के आचरणों व गतिविधियों में सहयोग करते हैं और जिनके बारे में हम यह भी जानते हैं कि उनसे बच्चों को असमान लाभ मिलेगा, उन्हें हतोत्साहित या निषिद्ध भी नहीं किया जा सकता। अतः शैक्षणिक समानता को प्रोत्साहित करने के तमाम कदम उठाने की गुंजाइश भी रहती है। अतः हम, उदाहरण के लिए, सरकार द्वारा वित्त पोषित अनिवार्य स्कूली शिक्षा; समृद्ध लोगों के लिए निजी शिक्षण पर ऊंचे कर (यहां तक कि निजी शिक्षा पर निषेध); निम्न आय वर्ग के बच्चों के लिए चल रहे स्कूलों को अतिरिक्त वित्त; सभी बच्चों के लिए सरकारी सहयोग से स्वास्थ्य व दांतों की देखभाल की व्यवस्था आदि उपाय परिवार की एकनिष्ठता को टिकाए रखने के लिए विचार की विषयवस्तु के साथ पूर्णतः सुसंगत हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह मानने का कोई कारण नहीं कि उपरोक्त उपाय माता-पिता व बच्चों के बीच घनिष्ठ व प्रेम भरे रिश्तों के लिए, जो परिवार के मूल्य का केन्द्र है, किस प्रकार का खतरा प्रस्तुत कर सकते हैं।

शैक्षिक समानता व परिवार की अखण्डता को परस्पर जोड़ने का सबसे कारगर उपाय बेहद सरल भी है। शैक्षणिक असमानता के फलस्वरूप और इस कारण आजीवन अपेक्षित आय पर बच्चों के भविष्य पर होने वाले प्रभाव के बारे में हम जितना जानते हैं उस आधार पर यह कल्पना करना भी कठिन है कि परिवारों की आय तथा सम्पन्नता में जो भारी अन्तर हैं उनकी पृष्ठभूमि में कौन से उपाय शैक्षणिक समानता हासिल कर सकेंगे। आय की असमानता को कम करने के उपाय परिवार की एकनिष्ठता में कोई व्यवधान नहीं पैदा करते; सम्पन्न माता-पिता के पास अपने बच्चों पर खर्च करने के लिए शायद कम राशि हो, पर खुद को उनके साथ बांटने में तो कमी नहीं आएगी। दरअसल, क्योंकि गरीबी ही परिवार के सुचारू संचालन में व्यवधान डालने वाला एक प्रमुख घटक है, असमानताओं को घटाना इस संस्था के लिए लाभदायक ही होगा।

शैक्षणिक समानता में मुख्य व्यवधान क्या हैं ?

शैक्षणिक समानता के समक्ष उपस्थित बाधाएं विभिन्न देशों में अलग-अलग हैं। हम जानते हैं कि सभी देशों में वर्ग असमानताओं की एक प्रमुख भूमिका होती है। परन्तु शिक्षा व्यवस्था शैक्षणिक समानता को स्थापित करने में जो योगदान देती है वह भी अलग-अलग होता है। मैं अमरीका तथा इंग्लैण्ड में राज्य (सरकार) तथा निजी क्षेत्र की भूमिकाओं की तुलना करना चाहता हूं। हम पहले अमरीका को देखते हैं।

सरकारी क्षेत्र में व्यय में अमरीका भारी असमानता की अनुमति देता है, यह अंतर एक से दूसरे राज्य में और किसी राज्य के अंदर भी देखा जा सकता है; और तो और किसी निश्चित जिले (स्कूल डिस्ट्रिक्ट) तक में। जो बच्चे अलाबामा में रहते हैं उन पर प्रति छात्र 5267 डॉलर खर्च होता है और जो न्यू जर्सी से लगभग आधा है जहां प्रति छात्र 9897 डॉलर व्यय किया जाता है। विस्कॉन्सिन में, जिसने नौवें दशक में एक सरकारी समानीकरण (स्टेट इक्वलाइजेशन) फार्मूला

अपनाया था ताकि असमानताएं घटाई जा सकें, सम्पन्न स्कूल डिस्ट्रिक्टों में विपन्नतम स्कूल डिस्ट्रिक्टों की तुलना में प्रति छात्र करीब दुगनी राशि व्यय की जाती है। और इस हिसाब में अधिक पूंजी निवेश के संचयी प्रभाव को तो जोड़ा ही नहीं गया है। फिर भी विस्कॉन्सिन तुलनात्मक रूप से जिम्मेदार राज्य है; पेन्सिलवेनिया अपने अधिक संपन्न स्कूल डिस्ट्रिक्टों को अपने गरीबतम छात्रों की तुलना में तिगुनी राशि व्यय करने की अनुमति देता है (फिलेडेल्फिया एन्क्वायर 12 फरवरी, 2001)। इधर नॉर्थ कैरोलाइना चार गुनी राशि तक खर्च में देता है। (शार्लेट ऑब्जरवर 11/2500)

यद्यपि स्कूल डिस्ट्रिक्ट, राज्यों के विपरीत, आधिकारिक रूप से अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले कुछ स्कूलों के बच्चों पर अन्य स्कूलों के बच्चों से अधिक खर्चने की छूट नहीं दे सकता, फिर भी वे भी यह सुनिश्चित करते हैं कि गरीब मुहल्लों में रहने वाले बच्चों की, सम्पन्न मुहल्लों के बच्चों की तुलना में सफल होने की सम्भावना कम हो। मुहल्ला स्कूलिंग व्यवस्था यह सुनिश्चित करती है कि अधिक सम्पन्न बच्चे जिन्हें पढ़ाना अधिक आसान है, एक साथ एक ही स्कूल में हों और एक-दूसरे को शैक्षिक संसाधन उपलब्ध करवाएं। अब क्योंकि सम्पन्न मुहल्लों के स्कूलों में ऐसे बच्चे होते हैं जिन्हें पढ़ाना अधिक आसान और संतोषप्रद होता है, शिक्षकों में यह स्पर्धा रहती है कि उनका तबादला उन्हीं स्कूलों में हो, अतः प्रबंधक बेहतर शिक्षकों में से चुन पाते हैं और जिन बच्चों की जरूरत सबसे कम हो उन्हें सबसे अच्छे शिक्षक मिल जाते हैं। ये तमाम बातें शैक्षणिक असमानता में योगदान देती हैं। निजी क्षेत्र का योगदान लगभग कुछ नहीं होता। यह सच है कि अमरीका में कुछ विशिष्ट निजी स्कूल (इलीट प्राइवेट स्कूल) हैं। वाशिंगटन का सेंट एल्बन्स, जिसमें एल गोर तथा जैस्सी जॅक्सन के बच्चे पढ़ते हैं, की फीस करीब 20 हजार डॉलर प्रतिवर्ष है। परन्तु अमरीका के जो 12 प्रतिशत बच्चे निजी स्कूलों में पढ़ते हैं उनके बच्चों के शिक्षण पर व्यय करने के लिए सरकारी (सार्वजनिक) स्कूलों के बच्चों की तुलना में आधी से भी कम राशि होती है। जो बच्चे शहरी के अन्दरूनी भागों में स्थित स्कूलों में जाते हैं उनसे शायद अधिक, पर उपनगरीय (सबअर्बन) साधन-सम्पन्न स्कूलों की तुलना में काफी कम। उनकी वर्ग छवि (क्लास प्रोफाइल) तथा क्षमता छवि (या एबिलिटी) प्रोफाइल सार्वजनिक स्कूलों के समान होती है और सच तो यह है कि अधिकांश सार्वजनिक (सरकारी) स्कूलों की तुलना में अधिकांश निजी स्कूलों की वर्ग की छवि ही अधिक विषम होती है। जिन शहरों में सार्वजनिक शिक्षण सबसे खराब है और जहां सबसे कम वित्त उपलब्ध करवाया जाता है उनमें कम लागत वाले निजी स्कूल सबसे अधिक सफल होते हैं। अमरीका में निजी शिक्षण दरअसल शिक्षण तथा शैक्षणिक न्याय के क्षेत्रों में सरकार की तमाम असफलताओं का लक्षण है, उसका कारण नहीं।

इस स्थिति की तुलना हम यूके की स्थिति से करते हैं। यूके में स्कूलों को स्थानीय तथा केंद्रीय स्तर पर एकत्रित करों से वित्त उपलब्ध करवाया जाता है। यहां जो मूल फार्मूला इस्तेमाल होता है उसमें स्थानीय निकायों की कर उगाहने की क्षमता का ध्यान रखा जाता है अतः जिन निकायों की कर एकत्रण की क्षमता कम हो उन्हें केंद्र सरकार से अधिक कर एकत्रित कर पाने वाले निकायों की तुलना में अधिक पूरक राशि उपलब्ध करवाई जाती है। परन्तु यह मानक व्यय आकलन (स्टैण्डर्ड स्पैंडिंग असैस्मेंट) निकाय विशेष की खास आवश्यकताओं के प्रति भी संवेदनशील होता है - अगर क्षेत्र में गरीबी में रहने वाले बच्चों की संख्या काफी बड़ी हो या बेरोजगारी की दर ऊंची हो या लंदन के मामले में जो मंहगा शहर है, सार्वजनिक क्षेत्र की आय के अनुपात में जीने के लिए अधिक व्यय करना पड़ता हो। मानक व्यय आकलन इन तमाम घटकों को ध्यान में रखता है। नतीजा यह होता है कि देशभर में जहां जरूरतमंद आबादी के बच्चे पढ़ते हैं वहां प्रति छात्र खर्ची जाने वाली राशि कम जरूरतमंद आबादी की तुलना में कुछ अधिक होती है। अमरीका के विपरीत यहां निजी क्षेत्र तक पहुंच सम्पन्न लोगों तक ही सीमित रहती है। कुछ अपवाद भी होते हैं और कुछ कम आय वाले माता-पिता अपने बच्चों को निजी स्कूलों में भेजने के लिए काफी त्याग और संघर्ष भी करते हैं। फिर भी निजी स्कूलों के छात्रों की सामजिक-आर्थिक छवि समूचे समाज की सामान्य छवि के आस-पास भी नहीं होती। निजी क्षेत्र के अकादमिक रुझान वाले निजी स्कूलों में पढ़ने पर विशिष्ट विश्वविद्यालयों में दाखिले तक पहुंच बढ़ती है और इसका अंततः श्रम-बाजार में लाभ भी मिलता है : और उधर व्यक्ति की सामाजिक-आर्थिक स्थिति निजी स्कूलों तक उसकी पहुंच बढ़ाती है। मतलब यह कि यूके में यह क्षेत्र शैक्षणिक असमानता में योगदान करने वाले घटकों में प्रमुख घटक है।

निष्कर्ष क्या है ? यूके में अनुबन्ध व्यवस्था तथा वाउचर

अब मैं इस बात पर आता हूं निजी स्कूलों के प्रति हमारा रवैया क्या होना चाहिए। जैसा मैं पहले ही रेखांकित कर चुका हूं विभिन्न राष्ट्रीय संदर्भों में यह अलग-अलग होगा। मैं यूके पर ध्यान केंद्रित करूंगा। मैं निजीकरण के दो विचारों के विरुद्ध तर्क करना चाहूंगा जो वर्तमान में लोकप्रिय हैं।

अनुबन्ध की व्यवस्था

यूके सरकार ने एक खास प्रतिमान (मॉडल) अपनाया है जिसमें निजी कम्पनियों को किन्हीं निश्चित स्कूलों के प्रबंधन का अनुबन्ध दे दिया जाता है। इस अनुबन्ध की शर्तें अलग-अलग होती हैं, पर स्कूल की जो मूल व्यवस्थाएं हैं वे अपरिवर्तित रहती हैं। उदाहरण के लिए निजीकरण के पहले बच्चों को जिस प्रक्रिया से स्कूल आवंटित होते थे वह प्रक्रिया बरकार है। अब तक सरकार ने

प्रत्येक स्कूल को जिसे निजीकृत किया गया है खासी राशि उपलब्ध करवाई है। जिससे यह मूल्यांकन करना भी कठिन बन जाता है कि दरअसल निजीकरण का यह हस्तक्षेप कितना सफल रहा है, पर जाहिर है कि व्यापक निजीकरण के दौर में निरंतर ऐसा करना संभव नहीं होगा; सरकार दस लाख पाउण्ड चन्द निजीकृत स्कूलों को दे सकती है, पर सैकडों-हजारों स्कूलों को नहीं। अनुबन्धित करने के इस प्रतिमान से वास्तविक लाभ की उम्मीद नहीं की जा सकती, क्योंकि बाजार की स्थितियां इसे असम्भव बनाती हैं। यह इसलिए :

अंतर्निहित सीमित आपूर्ति (इन्ट्रिन्सिकली लिमिटेड सप्लाई)

स्कूल व्यावहारिक सिद्ध हों इसके लिए उनमें कम से कम एक निश्चित आकार से ऊपर होना जरूरी होता है, अतः आपूर्ति हमेशा आवश्यक रूप से सीमित ही होगी, और कोई भी स्कूल हमेशा ठीक वैसा नहीं होगा जैसा किसी उपभोक्ता विशेष को चाहिए। मतलब यह कि किसी भी उपभोक्ता के लिए पांच या छह स्कूल ही ऐसे होंगे जो उनके उपयोग के लिए सही होंगे। इसके विपरीत अगर सवाल नाई या प्लंबर का हो तो असंख्य विकल्पों में से किसी एक को चुना जा सकता है।

सेवा प्रदाता को बदलने की ऊंची कीमत

अगर बच्चा किसी एक स्कूल में पढ़ रहा हो तो उसे किसी दूसरे स्कूल में भेजने में भारी कीमत चुकानी पड़ती है (उसकी शिक्षा-दीक्षा के अर्थ में जो दरअसल वास्तविक मुद्दा है)। जबकि नाई या प्लंबर बदलने के मामले में यह कीमत छोटी होती है (यहां हम यह मान कर चल रहे हैं कि घर का किन्हीं दुर्घटनाओं के लिए बीमा मौजूद होगा और कुछ ही ऐसे लोग होंगे जिनकी आजीविका उनके बेहद करीने से सुन्दर कटे बालों पर निर्भर होगी)। कोई भी व्यक्ति स्कूलों के बारे में पुख्ता जानकारी नहीं रखता और अधिकांश तो खास जानते ही नहीं हैं, क्योंकि सही और पक्की सूचना मिलती भी मुश्किल से है; और प्रासंगिक सूचना तो और भी विशिष्ट होती है - वह यह नहीं होती कि स्कूल कितना अच्छा है, बल्कि यह होती है कि आपके खुदके बच्चे के लिए वह अच्छा सिद्ध हो इसकी संभावना कितनी है। खराब स्कूली शिक्षण के नाम पर कोई बीमा भी नहीं है और यह कल्पना कर पाना भी कठिन है कि ऐसा कोई बीमा हो। और फिर यूके की शिक्षा व्यवस्था स्कूलों को अपने छात्र चुनने की छूट देती है, और बाजार की नजर से यह एक और खोट या खामी है : नवशास्त्रीय सिद्धान्त (निओक्लासिकल थ्योरी) यह मान कर चलता है कि क्योंकि फर्में कीमत पाने वाली होती हैं वे यह तय नहीं कर सकतीं कि किस उपभोक्ता को वे लेंगी और किसे खारिज कर देंगी। फिर भी समस्तरीय समूह (पीयर ग्रुप) स्कूल के उत्पाद का हिस्सा होता है, अतः उपभोक्ता चुनने के माध्यम से स्कूल अपने उत्पादों में अंतर कर पाता है।

अनुबंधों की राजनीतिक कमजोरी स्पर्धा को कुण्ठित करती है

शिक्षा नीति मूलतः राजनीतिक होती है। मतदाताओं और राजनेताओं का आग्रह रहता है कि स्कूल लोकतांत्रिक रूप से जवाबदेह हों। ऐसा आग्रह उचित भी है क्योंकि शिक्षा का न्यायपूर्ण वितरण होना चाहिए, और इस वितरण का न्याय धन-सम्पत्ति द्वारा या चुनने वाले माता-पिता द्वारा अगुआ नहीं कर लिया जा सकता। उपभोग की वस्तुएं बनाने वाली या नलों और बालों की देखाभाल की सेवा देने वाली कम्पनियों को इस दृष्टि से नियामित करना जरूरी नहीं कि वे अपनी बनाई वस्तुएं या दी जाने वाली सेवाओं का न्यायोचित वितरण करें - यहां न्याय स्थापित करने के लिए पृष्ठभूमि सम्पत्ति के वितरण के पैटर्न को हासिल करना काफी होता है, और लोग किस वस्तु या सेवा को चुनते हैं यह निर्णय अपनी संपत्ति से वे स्वयं क्या करना चाहते हैं को परिलक्षित करता है - पर शिक्षा का उत्पादन करने वाली कम्पनियों का कठोर नियामन अत्यावश्यक है। इसका अर्थ हुआ कि जिन निजी कम्पनियों को अनुबंध दिया जाए वह अल्पकालिक हो ताकि अकुशल या अक्षम कम्पनियों को हटाया जा सके। इसका अर्थ यह भी है कि कम्पनियों को लगातार बदलते नियम-कायदों का सामना करना होगा। अल्पावधि के अनुबंध यह सुनिश्चित करने लिए भी आवश्यक हैं ताकि कम्पनियां वास्तविक स्पर्धा के दबाव का सामना करें। खुले बाजार में कम्पनियां हमेशा ही अनेक स्पर्धा करने वालों और अनेक उपभोक्ताओं का सामना करती हैं। ऐसी स्पर्धा के अभाव में यह उम्मीद करने का कोई कारण नहीं बनता कि निजी स्कूल परंपरागत सरकारी क्षेत्र से अधिक प्रभावी कार्य करेगा। परन्तु दूसरी ओर, अल्पावधि के अनुबंध तथा लगातार बदलने वाले नियामन के कायदे, अनुबंधों को अनाकर्षक बनाते हैं अतः जाहिर है कि उनके लिए बोली लगाने वालों की संख्या भी कम ही होगी। इसके बावजूद सरकार निजी क्षेत्र से बेहतर व अधिक सस्ती आपूर्ति की उम्मीद इस कारण रखती है कि अनुबंधों के लिए स्पर्धा होगी और अनेक बोली लगाने वाले होंगे। परन्तु अनुबंध की आवश्यक शर्तें यह सुनिश्चित करती हैं कि एक वास्तविक स्पर्धात्मक टेण्डर प्रक्रिया न हो।

समापन शर्तें अनुबंध को दोहराने पर बाध्य करते हैं

इस समस्या का समाधान सरकार लम्बी अवधि के अनुबंधों में तलाशने की कोशिश करेगी, पर ऐसी समापन शर्त भी शामिल करना चाहेगी जो किसी निश्चित अवधि तक कुछ निश्चित परिणामों को हासिल करना जरूरी बनाते हों। इस रणनीति में दो समस्याएं हैं। पहली समस्या का संबंध समापन धाराओं के चरित्र से है। जिस भी परिणाम का उल्लेख इन धाराओं में होगा वे अनुबंधित ठेकेदार की सबसे महत्त्वपूर्ण और तात्कालिक प्राथमिकता बन जाएगी। सम्भावना

यही है कि ठेकेदार उन्हें पूरा कर दे, फिर चाहे उसका समग्र प्रदर्शन कैसा भी क्यों न रहे। सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि वे समापन शर्तों में जो कुछ शामिल करें वह समग्र प्रदर्शन का अच्छा एवजी हो। मुझे शक है कि ऐसा भरोसेमंद तरीके से हो सकेगा, इस शंका के कारण मैं नीचे स्पष्ट करूंगा, पर मान लेते हैं कि ऐसा सफलतापूर्वक किया जा सकेगा। पर इसका मतलब होगा कि सरकार एक लम्बी अवधि के अनुबंधों को अल्पावधि में दोहराए जाने वाले अनुबंधों की शृंखला में तब्दील कर रही है। इस रणनीति की दूसरी समस्या यह है कि समापन शर्तें शामिल करने भर से कोई अनुबंध वास्तविक अर्थों में स्पर्धात्मक नहीं बन जाता, जब तक कि ऐसे वैकल्पिक प्रदाता किनारे खड़े, उसे पाने के लिए तैयार न हों जिनसे सरकार को बेहतर प्रदर्शन पाने का भरोसा हो। अनुबन्ध की व्यवस्था व्यापक हो जाए तब भी ऐसा होना जिन कारणों से संभव नहीं उन पर मैं बाद में चर्चा करूंगा। यहां केवल इतना दर्ज कर लेना काफी है कि फिलहाल स्थिति ऐसी नहीं है। अल्पावधि के अनुबंधों के कई दूसरे नुकसान भी हैं। ऐसी स्थिति में कम्पनियों के लिए लम्बी अवधि की योजना बनाने और लम्बी अवधि के लिए निवेश करने का कोई प्रोत्साहन भी नहीं होता, क्योंकि इस बात का कोई आश्वासन ही नहीं होता कि वे स्वयं इसका कोई फायदा उठा सकेंगे। रेल्वे की ढांचागत व्यवस्थाओं में इसी कारण से हमेशा ही आवश्यकता से कम निवेश किया जाता है। जब भी निवेश की दरकार होगी वे सरकार से यह राशि उपलब्ध करवाने की मांग करेंगे, जिसका मतलब होगा कि किसी दूसरे नाम की आड़ में सरकारी नियंत्रण या सरकार द्वारा अनुदानित ऐसी रेल व्यवस्था जो शेयरधारियों को लाभ पहुंचाती हो।

लाभ की राजनीतिक कमजोरी स्पर्धा को कुण्ठित करती है।

इधर कम्पनियों को भी यह भरोसा नहीं होता कि अगर उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिल भी जाए तो वे अर्जित लाभ को खुद रख सकेंगी : जरा कल्पना करें कि नॉर्ड एन्गलिया कम्पनी द्वारा की गई इस घोषणा पर कैसा हो-हल्ला मचेगा कि स्कूलों के सरकारी अनुबन्ध से कम्पनी ने 3 से 10 अरब पाउण्ड का मुनाफा कमाया है। कल्पना करें कि ऐसे में आकस्मिक आय पर कर लगाने का कैसा दबाव बनेगा। संभव है कि मौजूदा लेबर सरकार इस दबाव का सामना कर सके। पर उसके पास हमेशा ही बहुमत होगा यह तो तय नहीं है और अगर उसे किसी दूसरे दल के साथ मिलकर सरकार चलानी पड़े या सत्ता में बने रहने के लिए अपने दल के वाम-पंथियों पर निर्भर रहना पड़े तो उसके लिए इस दबाव के आगे झुकना राजनीतिक रूप से अधिक श्रेयस्कर हो सकता है। स्वयं कम्पनियां भी इस भावना के बारे में सचेत हैं और यह भय लम्बी अवधि के निवेश को रोकता है।

सार्वजनिक सेवा की नैतिकता लाभ कमाने वाली कम्पनियों के कारण कमजोर बनती है और लम्बी अवधि निवेश को हतोत्साहित करती है

लाभ कमाने वाली कम्पनियां सार्वजनिक सेवा की नैतिकता को कमजोर बनाती हैं और सुनिश्चित सेवा अवधि का वादा नहीं करतीं यानी शिक्षक मंहगे हो जाते हैं। साथ ही शिक्षण कार्य उच्च स्तर की कुशलता की व सघन श्रम की मांग करने वाला कार्य है। इस अर्थ में यह उन कार्यों से भिन्न है जिन्हें स्थानीय प्रशासन बड़ी आसानी से ठेकों पर उठा देता है, जैसे कचरा निष्पादन का काम। अब तक अधिकांश विकसित देशों में सरकारें परंपरागत रूप से इस दक्ष व प्रशिक्षित श्रम को तीन कारणों से कम कीमत में पाती रही हैं। पहला यह कि प्रतिभाशाली महिलाओं को पढ़ाने के सिवाय अन्य अवसर उपलब्ध ही नहीं थे, सो वे कृत्रिम रूप से बेहद कम वेतन पर काम करने को तैयार थीं। दूसरे, शिक्षकों में सार्वजनिक सेवा का बोध था, उनकी यह भावना कि उनके काम का सामाजिक मूल्य है उन्हें अपनी प्रतिभा के माध्यम से जितना कमाया जा सकता था उससे कम राशि में काम करने को प्रोत्साहित करता था। तीसरे शिक्षक आय की कीमत पर नौकरी की सुरक्षा या कार्यकाल की सुनिश्चितता को चुन लेते थे। इनमें से पहला कारण आज गायब हो चुका है, शायद हमेशा-हमेशा के लिए। पर अन्य दोनों कारणों को लाभ कमाने की मंशा रखने वाली कम्पनियों का व्यापक उपयोग भारी नुकसान पहुंचाएगा। जिस कम्पनी का अनुबंध ही पांच वर्षों का हो वह अपने द्वारा नियुक्त किए गए लोगों को इससे अधिक सेवा अवधि का वादा भी नहीं कर सकती। और जो भी व्यक्ति लाभ कमाने वाली कम्पनी के लिए काम करता/करती हो वह कम्पनी के फायदे के लिए अपना शोषण भला क्यों होने देगा, न उसे ऐसा होने देना चाहिए। सरकारी सेवारत कोई शिक्षक यह मान सकता है कि उसका कम वेतन किन्हीं अन्य महत्त्वपूर्ण सेवाओं के लिए सार्वजनिक वित्त उपलब्ध करवा सकता है, पर एक निजी कम्पनी द्वारा नियुक्त शिक्षिका यह जानती है कि वह कम्पनी के शेयरधारियों के लिए खट रही है। शिक्षा व स्वास्थ्य जैसी सेवाओं की आपूर्ति में लाभ कमाने वाली कम्पनियों को जोड़ना सार्वजनिक सेवा की नैतिक भावना को करदाता की भारी वित्तीय कीमत पर और देश की नैतिक कीमत पर कमजोर बनाती है।

उपभोक्ता की प्रभुसत्ता नहीं बचती

उपभोक्ता नहीं बल्कि सरकार यह तय करती है कि किस कम्पनी का उपयोग किया जाएगा। श्रेष्ठ बाजार को कुशल बनाने का केंद्रीय मंत्र है उपभोक्ता की प्रभुसत्ता। उपभोक्ता ही यह तय करता है कि उसे किस कम्पनी की वस्तु लेनी है, जिससे वे कम्पनियां विस्तृत होती हैं, संकुचित होती हैं, या खत्म भी हो सकती हैं और

यह सब निर्भर करता है उपभोक्ता की मांग पर। इस तरह की कोई प्रक्रिया सरकारी योजनाओं में शामिल नहीं है। बच्चों के माता-पिता नहीं बल्कि सरकार ही यह तय करेगी कि कौन-सी कम्पनी, कितने समय के लिए स्कूल चलाएगी और यहां कोई ऐसी प्रक्रिया भी नहीं है जो यह सुनिश्चित करे कि जिस स्कूल में कोई भी अपने बच्चे पढ़ने न भेजना चाहे वह बन्द कर दिया जाएगा। स्कूलों में छात्र होंगे इसकी गारंटी है क्योंकि स्थानों की आपूर्ति पर सरकार का पूरा नियंत्रण बरकार है, और वह उनमें स्पर्धा पैदा करने के लिए अतिरिक्त स्थान बनाने को फिजूलखर्च ही मानेगी। स्पर्धा करने वाले स्कूलों को मांग की आपूर्ति के लिए विस्तार की छूट नहीं होगी। सो दरअसल होगा यह कि अधिकांश असफल होते स्कूलों में, मय उनके जिनके भविष्य अनुबंध नहीं दिया जाना है, ऐसे बच्चे भरे होंगे जिनके माता-पिता ने उन्हें उनके स्कूलों से निकाल कर कहीं और भेजना चाहा था।

निर्णय ले पाने के लिए सरकार के पास आवश्यक सूचना हो ही नहीं सकती

अब सबसे महत्त्वपूर्ण बिन्दु। सरकार किस आधार पर यह तय करती है कि कोई कम्पनी का अनुबंध जारी रहे या उसे रद्द कर दिया जाए या (फिर समापन शर्त लागू कर दी जाए) ? पहली बात तो यह कि यह फैसला न तो स्कूल की लोकप्रियता के आधार पर होता है, न ही उसके लाभांश (प्रॉफिट मार्जिन) के आधार पर लिया जाता है, बल्कि सरकार उत्कृष्टता के अपने ही मानकों के आधार पर यह निर्णय लेती है। दूसरे, यह फैसला स्कूल का प्रबंधन कितनी कुशलता से किया गया इसके आकलन पर आधारित नहीं होता, बल्कि इस तथ्य पर आधारित होता है कि अन्य संभाव्य विकल्पों की तुलना में प्रबंधन कितना कुशल था। दूसरे शब्दों में यह फैसला तथ्यों के प्रतिकूल (काउंटर फैक्च्यूअल) फैसला होता है। जरा समापन शर्तों में उल्लिखित इस आग्रह पर विचार करें कि चार वर्षों के अन्त तक 50 फीसद बच्चों को जीसीएसई परीक्षाओं 5 सी या अधिक मिलने चाहिए। मान लें कि 4 वर्ष के बाद किसी स्कूल के मात्र 25 प्रतिशत बच्चे ही इस लक्ष्य को हासिल कर पाते हैं। ऐसे में सरकार उपरोक्त धारा को लागू करे तो यह गैर-जिम्मेदारना कृत्य होगा, बशर्ते सरकार के पास यह मानने का कारण न हो कि कोई दूसरा ठेकेदार बेहतर प्रदर्शन कर सकता था। पर यह मानना असंभव होगा : और अगर संभव भी हो तो भी निर्णय लेने वाले अधिकारी इसे असंभव ही मानना चाहेंगे। क्योंकि अन्यथा यह संभावना उनके मूल निर्णय की समझदारी पर ही प्रश्नचिन्ह लगाएगी। यहां सूचना संकलन को लेकर भारी समस्या है : खराब स्कूलों को पहचानना तुलनात्मक रूप से आसान होता है और यही बात सर्वश्रेष्ठ और बिल्कुल खराब स्कूलों पर भी लागू होती है परन्तु ज्यादातर स्कूल जो न तो श्रेष्ठ होते हैं और न बिल्कुल निकृष्ट ही, उनके बीच तुलनात्मक सफलता का फैसला करना बेहद कठिन है। खराब स्कूलों में आए सुधार को पहचानना और श्रेष्ठ स्कूलों में आई गिरावट को पहचानना आसान होता है, परन्तु इनमें भी यह फैसला करना कि किसी स्कूल में आया सुधार किसी अन्य स्कूल में आई गिरावट की तुलना में अन्य संभाव्य विकल्पों के संदर्भ में बेहतर है या नहीं बेहद कठिन है। अगर सबसे खराब स्कूलों के अलावा किसी भी प्रबंधन का अनुबन्ध रद्द किया जाता है तो वह ऐसे ही किसी मूलतः मानमाने निर्णय पर ही आधारित होगा। पर यही तो अधिकांश ऐसे स्कूलों में आत्मसंतुष्टि की भावना को पनपाने का नुस्खा है जो प्रदर्शन के दो एकांतिक छोरों के बीच में हो। जब तक अनुबन्ध रद्द नहीं किए जाते या उनका नवीनीकरण नहीं किया जाता, ठेकेदार अक्सर अपनी उपलब्धियों के आसन पर आत्मतुष्ट हो बिराजे रहते हैं।

ठेके पाने के लिए स्पर्धा करने वालों की तुलनात्मक कमी स्थिति में मदद नहीं करती। ऐसे स्कूलों को चलाने वाली फर्मों को उत्तरदायी नहीं बनाया जा सकता क्योंकि ऐसा कर पाने के लिए सरकार के पास प्रासंगिक सूचना ही नहीं होगी। यह सच हो सकता है कि मूल्य संवर्धित (वैल्यू एडेड) विश्लेषण इसमें मददगार रहे, परन्तु फिलहाल कोई भी व्यवहार्य मूल्य संवर्धित विश्लेषण पद्धति उपलब्ध नहीं है और उन्हें बनाना कठिन सिद्ध हो रहा है और ये कठिनाइयां नगण्य नहीं हैं। सरकार ने एक योजना प्रारंभ की है जिसमें 4 से 16 वर्ष तक के प्रत्येक छात्र से संबंधित प्रासंगिक आंकड़े (परीक्षा-परिणाम, किन स्कूलों में अध्ययन किया व कुछ अन्य सूचनाएं) दर्ज किए जा रहे हैं। अगर ये सूचनाएं सही-सही एकत्रित हो सकें तो सिद्धान्त में मूल्य-संवर्धित तालिकाओं का निर्माण हो सकेगा। यहां यह रेखांकित करना उचित होगा कि यह आंकड़े-एकत्रण का काम विशाल है : उदाहरण के लिए क्योंकि हम जानते हैं कि सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि नतीजों का विधेय (प्रेडिकेटर) हैं, हमें बच्चों के परिवारों के आय संबंधी उतार-चढ़ाव के बारे में विस्तृत (और तुलनात्मक रूप से काफी जल्दी-जल्दी) सूचनाओं की आवश्यकता होगी। छात्रों की गतिशीलता (मोबिलिटी) के प्रभावों से जुड़ी गंभीर समस्याएं हैं और इस विषय में भी शंका करना वाजिब है कि इससे संबंधित आंकड़े सही-सही एकत्रित होंगे। परन्तु अगर इन समस्याओं को लांघ भी लिया जाए तो भी दो अलंघ्य कठिनाइयां बनी रहेंगी। जैसाकि हार्वी गोल्डस्टाइन स्पष्ट करते हैं :

स्कूलों का संक्षेपण एक ही मूल्य संवर्धित अंक (स्कोर) के आधार पर नहीं किया जा सकता - वे भिन्न-भिन्न प्रकार के छात्रों के लिए, विभिन्न विषयों में, अलग-अलग रूप से 'प्रभावी' होते हैं।

इससे भी अधिक गंभीर बात यह है कि क्योंकि यहां संख्या छोटी होती है अतः प्रतिदर्श त्रुटि (सैम्पलिंग एरर) के चलते अनिश्चय का अंतरण काफी चौड़ा हो जाता है। और इसका मतलब यह है कि 60 से 80 प्रतिशत स्कूलों को समूचे सैम्पल के औसत से अलग कर

देखा नहीं जा सकता। कुछ स्कूल जरूर अत्यान्तिक नजर आ सकते हैं, परन्तु क्या समय के साथ सभी ठीक ऐसे ही नजर नहीं आएंगे ? साथ ही समय के साथ सुसंगत रूप ले बदलने वाले स्कूलों को पहचानना भी बेहद कठिन है। दूसरे शब्दों में ज्यादातर स्कूलों के संदर्भ में सांख्यिक रूप से संगत कोई भी ऐसा तरीका नहीं है जिससे आप उन्हें क्रमबद्ध कर सकें। और अगर आप किसी स्कूल को ओर-छोर से बाहर (आउटलायर) पाते भी हैं तो कई ऐसे कारण से हो सकते हैं जिस पर स्कूल का कोई नियंत्रण ही न हो।

हम बेहद आशावादी नजरिया ले कर चलें तो भी ये मूल्य संवर्धित तालिकाएं हमें एकान्तिक छोरों पर टिके स्कूलों को पहचानने में ही मदद कर सकेंगी, परन्तु उन तमाम स्कूलों के बीच अन्तर करने में मददगार नहीं होंगी जो सामान्य श्रेणी में आते हों। 2001 की गर्मियों में जब आईपीपीआर के सार्वजनिक-निजी साझेदारी आयोग ने अपनी रिपोर्ट जारी की थी तो उसके अध्यक्ष मार्टिन टेयलर ने दावा किया था कि अगर निजीकरण गिरते हुए स्कूलों के लिए लाभदायक होगा तो उससे अधिकांश अन्य स्कूलों को भी लाभ पहुंचना चाहिए। परन्तु मूल्य संवर्धित विश्लेषण के बारे में हम जितना जानते हैं वह हमें इससे ठीक विपरीत सोचने का कारण उपलब्ध करवाता है : क्योंकि मूल्य संवर्धित विश्लेषण हद से हद इतना ही कर सकता है कि एकान्तिक छोरों पर टिके स्कूलों के तुलनात्मक प्रदर्शन के बारे में हमें कुछ बताए, पर शेष के तुलनात्मक प्रदर्शन के बारे में कुछ भी नहीं।

सरकारों तथा माता-पिता को स्कूलों के बारे में अलग-अलग तरह की सूचना की आवश्यकता होती है

यहां यह जोड़ना प्रासंगिक होगा कि सरकारें तथा बच्चों के माता-पिता स्कूलों तथा उनके प्रदर्शन के बारे में बिल्कुल भिन्न प्रकार की सूचनाएं पाना चाहते हैं। सरकारें न तो यह जान सकती हैं, न जानने में रुचि रखती हैं कि प्रत्येक बच्चे के लिए व्यक्तिगत स्तर पर स्कूल कैसा प्रदर्शन करते हैं। उन्हें सभी बच्चों के प्रदर्शन के एवज में कोई पहले से चयनित मानक की दरकार होती है - जैसे जीसीएसई परीक्षा में कितने प्रतिशत बच्चों को 5 या उससे अधिक 'सी' मिल रहे हैं या स्कूल से गायब होने वाले बच्चों का प्रतिशत क्या है, या (महज सनकीपन के चलते) कितने प्रतिशत बच्चों को जीसीएसई परीक्षा में लैटिन और बढ़ईगिरी दोनों में 'सी' या उससे अधिक अंक मिल रहे हैं। पर एक मां अपने बच्चे की आवश्यकताओं को पूरा करने वाला स्कूल तलाशती है। वह यह फैसला भी कर सकती है कि कोई स्कूल जो अकादमिक रूप से खास जाना-माना न हो, वहीं उसके बच्चे बेहतर अकादमिक प्रगति कर सकेगा; या अधिक ऊंची उपलब्धियों वाले सहोदर से अगर उसे अलग कर दिया जाए तो वह हर क्षेत्र में बेहतर प्रगति कर सकेगा या सहयोग देने वाली और खुशमिजाज सहेलियों के साथ वह एक कमतर प्रदर्शन वाले स्कूल में बेहतर प्रगति कर सकेगी। या उसे उसके कटखने, उग्र और अप्रिय दोस्तों से अलग करना जरूरी है जो एक बेहतर प्रदर्शन वाले स्कूल में पढ़ रहे हों। वह अपने विवेक से यह भी सोच सकती है कि सहपाठियों के दबाव में उसके बेटी की स्कूल से गायब होने की संभावना कम है, सो वह उसे ऐसे स्कूल में भी भेज सकती है जहां अनुपस्थिति दर अधिक हो पर जो बालिकाओं को विज्ञान पढ़ाने में विख्यात हो। संभव है कि उसका बच्चा रौब-दाब से सहमता हो तो वह ऐसे किसी स्कूल को भी चुन सकती है जिसमें अनुशासन का बेहतर रिकॉर्ड हो फिर चाहे वहां का परीक्षाफल मध्यम दर्जे का ही रहता हो, बनिस्बत किसी ऐसे स्कूल के जहां नतीजे श्रेष्ठ होते हों पर बच्चे धौंस जमाते हों। मैं यह नहीं सुझा रहा कि माता-पिता स्कूल के बारे में इस प्रकार के निर्णय लेने की बेहतर स्थिति में होते हैं (यद्यपि वे दूसरों से, खासकर सरकारों से, बेहतर स्थिति में होते हैं क्योंकि वे कम से कम अपने बच्चे के बारे में काफी जानकारी रखते हैं)। पर यह रेखांकित अवश्य करना चाहता हूं कि उनके फैसले सरकारों से भिन्न विषयों पर होते हैं। सरकारों की इस बात में कोई रुचि नहीं होती कि किसी बालक विशेष के लिए स्कूल क्या करता है, उनका सरोकार केवल स्कूलों की समग्र गुणवत्ता से होता है। और मैं पहले ही समझा चुका हूं कि ऐसा करने के लिए वे कोई खास अच्छी स्थिति में वैसे भी नहीं होते। स्कूलों को माता-पिता के फैसलों के प्रति संवेदनशील बनाने का काम बिना निजीकरण के भी किया जा सकता है और निजीकरण का जो प्रतिमान (मॉडल) यूके सरकार का है वह स्कूलों को इन फैसलों के प्रति संवेदनशील नहीं बनाता है।

वैकल्पिक प्रतिमान : वुडहैड के वाउचर

इसका एक वैकल्पिक मॉडल स्कूलों के मुख्य निरीक्षक क्रिस वुडहैड ने अपनी हालिया पुस्तक में सुझाया है। निजीकरण के अन्य पैरोकारों की तरह वे अमरीका के मिल्वॉकी, विस्कॉन्सिन में पिछले एक दशक से चल रहे वाउचर कार्यक्रम से प्रभावित हैं और सुझाते हैं कि सरकार को माता-पिता को वाउचर देने चाहिएं जिनका उपयोग वे अपने पसंद के स्कूल में कर सकें। फिर चाहे वह सरकारी हो या निजी स्कूल। अनुबन्ध से यह बेहतर होगा क्योंकि इसमें सरकार नहीं बल्कि माता-पिता स्वयं यह चुनेंगे कि उनका बच्चा किस स्कूल में पढ़े और स्कूलों को अनुबन्ध देने के साथ सूचना एकत्रण की जो समस्या जुड़ी है उसका भी कुछ हद तक समाधान हो सकेगा। साथ ही इससे अलोकप्रिय स्कूलों का धंधा स्वतः ठप्प हो जाएगा और उन्हें बन्द करने की या उनमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं होगी। इसका अपेक्षित नतीजा यह होगा कि अधिकाधिक संख्या में बच्चे मौजूदा निजी स्कूलों में जाएंगे (या कालान्तर में नए स्कूलों में), जो सामान्यतः लाभ के लिए नहीं बल्कि लाभ न कमाने वाले (नॉन प्रोफिट मेकिंग) फाउण्डेशन चलाते हैं। ऐसे निजी स्कूल अस्तित्व में हैं और उनके

पास अनुभव तथा विशेषज्ञता भी है जिनसे सरकारी स्कूल स्पर्धा करने को प्रोत्साहित होंगे। वाउचर व्यवस्था निजी और सरकारी शिक्षण के बीच जो असमान अन्तर है उसे भी शायद मिटा सके और निजी स्कूलों को हमारे समाज के सभी बच्चों को शिक्षित करने के मिशन से जोड़ सके।

उदाहरणार्थ संयुक्त राज्य अमरीका में मुट्ठी भर छोटे निजी वाउचर कार्यक्रम चल रहे हैं मिल्वॉकी, क्लीवलैण्ड तथा फ्लोरिडा में, जो उन बच्चों को सरकारी वित्त से निजी स्कूलों में पढ़ने का अवसर देते हैं जिन्हें सरकारी स्कूलों में माकूल शिक्षा सेवाएं नहीं मिल पातीं। तर्क यह किया जाता है कि ये योजनाएं सुचारू रूप से चल रही हैं अतः इस मॉडल का उपयोग यूके में क्यों न किया जाए ? मिल्वॉकी योजना को ही लें जिसकी डिजाइन सबसे अच्छी है और जिसका सर्वाधिक अध्ययन किया गया है। आज यह कई हजार बच्चों को सेवा दे रहा है, जो लगभग सभी अश्वेत और लैटिन हैं और कानूनन निम्न आय वर्ग के परिवारों से हैं। ये बच्चे निजी स्कूलों में पढ़ते हैं और स्कूलों को उनसे वाउचर की कीमत से अधिक राशि लेने की छूट नहीं है और न ही वे क्षमता, विगत आचरण, धार्मिक जुड़ाव या अन्य किसी कारण को आधार बना उन्हें चुन सकते हैं। बच्चों की उपलब्धियों पर कार्यक्रम का प्रभाव विवादस्पद है और इस विवाद का मूल्यांकन इसलिए बेहद कठिन है क्योंकि सरकार ने पहले पांच वर्षों के बाद उपलब्धि आंकड़े देने की आवश्यकता ही खत्म कर दी। फिर भी अधिकांशतः यह कहा जाता है कि योजना हद से हद सीमित उपलब्धि लाभ दे रही है, फिर भी यह दावा कोई नहीं करता कि उपलब्धियों में कभी कमी नहीं आई है, और यह तब, जब बच्चे सरकारी स्कूलों की तुलना में केवल दो-तिहाई खर्च पर शिक्षित किए जा रहे हैं। इसके अलावा कई ऐसे फायदे भी हैं जो उपलब्धियों से संबंधित नहीं हैं जिनका मापन और कठिन है असंतोषजनक स्कूलों से और कभी-कभार खतरनाक परिस्थितियों से, अपने बच्चों को निकाल पाने पर माता-पिता में राहत की भावना, साथ ही अपने बच्चे की शिक्षा-दीक्षा में अधिक जुड़ाव की भावना और यह तथ्य कि वे छोटे स्कूल में पढ़ते हैं, ऐसे शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जाते हैं जिनसे बच्चे और उनके माता-पिता वास्तव में परिचित हो सकते हैं।

यह एक बार मान लें (चाहे यह असंभव ही क्यों न हो) कि मिल्वॉकी योजना को लेकर जो लोग आशावादी हैं वे सही हैं और इससे बच्चों की उपलब्धियों में, उनके कुशलक्षेम में, मापा जा सकने वाला सुधार आ रहा है, जो करदाता को एक कमतर कीमत पर उपलब्ध हो रहा है। अगर यह सच होता तो यह मिल्वॉकी तथा उस जैसे अन्य क्षेत्रों में इस योजना को चालू रखने और शायद फैलाने के पक्ष में सशक्त प्रमाण होता। एक समतावादी शिक्षानीति का पक्ष सबसे महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है सामाजिक रूप से वंचित बच्चों की उपलब्धि स्तर को ऊपर उठाना। पर अगर आशावादी सच भी हों तो भी यह यूके में इस मॉडल को आयातित करने को तर्क संगत नहीं ठहराता।

क्यों ? मुख्य कारण यह है कि दोनों देशों में निजी व सरकारी क्षेत्र का ढांचा बिल्कुल भिन्न है अतः अमरीका में वाउचर प्रणाली के फायदे यहां भी दोहराए जा सकेंगे इसकी अपेक्षा ही नहीं की जानी चाहिए। तो फिर ये अंतर क्या हैं ?

अव्वल और सबसे महत्त्वपूर्ण अंतर यह है कि अमरीका में निजी क्षेत्र में छोटे, अल्प कीमत पर शिक्षा सेवा उपलब्ध करवाने वाले स्कूलों की भरमार है जो अपने छात्रों को वर्ग या अकादमिक क्षमता के आधार पर नहीं चुनते। अमरीका ने निजी-स्कूलों में प्रति छात्र व्यय औसतन सरकारी स्कूलों में आने वाले प्रति छात्र व्यय का आधा है। और वाउचर स्कूलों में यह और भी कम है क्योंकि कोई भी महंगा विशिष्ट स्कूल इन योजनाओं में भागीदारी नहीं करता। इसके विपरीत यूके में निजी स्कूलों में प्रति छात्र व्यय सरकारी स्कूलों से दुगना है। सीधे-सीधे कहें तो अमरीका में निजी स्कूलों का एक बड़ा हिस्सा ऐसा है जो कम कीमत पर बच्चों को शिक्षित करता है और सभी बच्चों को शिक्षित करता है चाहे उनकी क्षमता, सम्पन्नता या आचरण का स्तर कैसा भी हो। ऐसा यूके में नहीं है।

दूसरी और संबंधित बात यह है कि सार्वजनिक स्कूलों में (अर्थात् सरकारी व्यवस्था में) व्यय में अक्रोशित करने वाली असमानता है - स्थानीय अनुदान के कारण सम्पन्न अर्द्ध-शहरी मुहल्लों सामान्यतः विपन्न शहरी मुहल्लों की तुलना में, जहां दरअसल बच्चों की जरूरतें तुलनात्मक रूप से अधिक हैं, दुगनी और कई बार तो तिगुनी राशि प्रति छात्र व्यय करते हैं। इधर अमरीका में सार्वजनिक स्कूल व्यवस्था स्वयं ही शैक्षिक अन्याय को बढ़ावा देने, उसे कायम रखने में मुख्य दोषी है जबकि वहां का निजी क्षेत्र जिसमें कम कीमत पर सेवा उपलब्ध करवाने वाले मौजूद हैं, अक्सर इस अन्याय से राहत दिलवाता है और मध्यम तथा निम्न आय वाले परिवारों के बच्चों को सरकारी व्यवस्था से निकलने का विकल्प देता है।

वुडहैड का प्रस्ताव काफी अस्पष्ट है। यह नर्सरी वाउचर योजना पर आधारित प्रतीत होता है, जिसमें सरकार प्रत्येक बच्चे को एक समान राशि का वाउचर देती है जिसका उपयोग कर माता-पिता अपनी पसंद के स्कूल में बच्चों को पढ़ा पाते हैं। स्कूल वाउचर के अतिरिक्त राशि भी ले सकते हैं और जिन बच्चों को दाखिल करना चाहें उन्हें चुन भी सकते हैं। तो वाउचर वास्तव में केवल उन लोगों के लिए एक इमदाद (सब्सिडी) भर बन जाती है जो पहले से ही निजी स्कूलों का उपयोग कर रहे हों। साथ ही माता-पिता को चुनने का अवसर भी सीमित होता है क्योंकि बच्चे कहां पढ़ेंगे इस बारे में अंतिम फैसला माता-पिता का नहीं बल्कि स्कूलों का ही होता है। पर आवश्यक नहीं कि वाउचर ठीक ऐसे-ही हों। हम साधन-परीक्षित वाउचरों की कल्पना भी कर सकते हैं जो निर्धन बच्चों के लिए ऊंची

राशि के हों और आय के अनुपात में क्रमशः समाप्त भी हो जाते हों, जैसे 75 हजार से अधिक कमाने वाले परिवारों के लिए कोई सहायता न दी जाए। हम यह भी सोच सकते हैं कि सभी वाउचर स्कूल बच्चों को लॉटरी के आधार पर चुनें और दाखिलों पर उनका कोई विवेकाधिकार न हो जैसा मिल्वॉकी योजना में होता है, जिसकी वुडहैड दुहाई देते हैं।

इस तथ्य पर गौर करना आवश्यक है कि दोनों देशों में दाखिलों पर नियंत्रण को लेकर निजी व सरकारी क्षेत्र में अलग-अलग नजरिया है। अमरीका में सभी स्कूलों के प्रोटेस्टेन्ट स्कूल होने की ऐतिहासिक नीति ने रोमन कैथोलिक स्कूलों के एक बड़े व स्वस्थ निजी क्षेत्र को जन्म दिया, जिन्होंने समाज के सभी तबकों को शिक्षित करना अपना मिशन बनाया, और यह क्षेत्र आज तक बाकायदा अपना अस्तित्व बनाए हुए है, यद्यपि सरकारी स्कूलों में धर्म का उल्लेख ही समाप्त कर दिया गया है। रोमन कैथोलिक धर्म प्रदेशीय संस्थाओं द्वारा चलाए जा रहे करीब स्कूल आधे मिल्वॉकी कार्यक्रम से जुड़े स्कूलों में हैं। गरीबों की सेवा उनके मिशन का केंद्रीय हिस्सा है। इन स्कूलों ने वाउचर प्रणाली में शामिल होने के लिए बाकायदा दबाव डाला था यद्यपि यह साफ था कि वे निम्न आय वर्ग के आवेदकों में कोई भेदभाव नहीं कर सकेंगे। जिन स्कूलों में बच्चों की संख्या अधिक हो उन्हें भी धार्मिक जुड़ाव अकादमिक क्षमता, कौम या आचरण के इतिहास के आधार पर चयन की अनुमति नहीं होती।

इसके ठीक उलट, यूके में निजी स्कूलों के पैरोकार निजी स्कूलों में उपस्थिति के लिए सरकारी अनुदान के प्रति तो उत्साहित हैं पर वे दाखिले की प्रक्रिया में निजी स्कूलों के नियंत्रण को समाप्त करने की हरेक कोशिश का लगातार विरोध भी करते रहे हैं। यह विरोध यह कहने का एक कूट संकेत है कि वे कम आय वाले बच्चों को बखुशी दाखिल तो करेंगे, पर केवल अपनी शर्तों पर, उन्हें ऊंची क्षमता वाले ऐसे बच्चे चाहिएं जिनकी आचरण संबंधी समस्याएं न हों - ऐसे बच्चे जिनकी उपस्थिति दरअसल उनके अधिक सम्पन्न ग्राहकों के लिए फायदेमंद सिद्ध हो। ऐसे स्कूल कम आय वर्ग के बच्चों को दाखिला देने का अवसर पा खुशी से निश्चित रूप से नहीं उछलेंगे जिनके लिए सरकार उन्हें उनके सामान्य ग्राहकों की तुलना में आधा शुल्क दे, खासकर उस स्थिति में जब ऐसे बच्चों के साथ काम करना अधिक कठिन भी हो। यूके का निजी क्षेत्र ऐसी वाउचर व्यवस्था से जुड़ेगा ही नहीं जो सामाजिक न्याय के साथ संगत हो - और जो यह मांग करता हो कि स्कूल सभी बच्चों को शिक्षित करने के मिशन को अपनाएं, केवल उनको ही न शिक्षित करें जिन्हें आसानी से और बिना ज्यादा खर्च किए शिक्षित किया जा सके।

राजनीतिक दृष्टि से यह बेहद महत्त्वपूर्ण है। इसका मतलब यह है कि यद्यपि एक प्रगतिशील वाउचर कार्यक्रम जो सही प्रकार से नियामित किया जाए, सिद्धान्ततः समता को प्रोत्साहित कर सकता, परन्तु व्यवहार में ऐसी किसी वाउचर व्यवस्था को लागू करने के प्रयास आंसुओं में ही डूबेंगे, अर्थात् उसे निजी स्कूलों (जिनका सहकार इसे सफल बनाने में आवश्यक होगा) की मांगों के अनुरूप बदल दिया जाएगा। प्रगतिशील वाउचर व्यवस्था के लिए राजनीतिक दबाव निजी क्षेत्र के लिए सरकारी अनुदान लाने मात्र तक रह जाएगा।

सरकारी अकुशलता

मैं अंत में निजी स्कूलों के प्रति उत्साह में निहित मान्यता पर टिप्पणी करना चाहूंगा, तथा सार्वजनिक सेवाओं के निजीकरण के बारे में सामान्य टिप्पणी भी करना चाहूंगा। वह यह कि सरकार या राज्य, मूलतः इन सेवाओं का अकुशल प्रदाता है और मुझे लगता है, उसे राजनीति की सार्वजनिक चयन वाले आर्थिक विश्लेषण के आधार पर खारिज कर दिया जाता है। जनता द्वारा चयन का अभियान राजनीति को शुल्क उगाही की गतिविधि के एक अवसर के रूप में देखता है और उन सरकारों की आलोचना करता है जो अकुशलता या बाजार प्रक्रियाओं को तोड़ने-मरोड़ने के विरुद्ध पुनर्वितरण गतिविधियां करती हैं। इस एतराज को जेम्स टूली बेहद प्रभावी रूप से सामने रखते हैं;

हमने दुनिया भर से एकत्रित प्रयोगाश्रित साक्ष्यों पर गौर किया है जो शिक्षा में सार्वजनिक अनुदान में भयावह असमानता को दर्शाता है। परन्तु शायद... सही प्रकार के सरकारी हस्तक्षेप से यह स्थिति बदले या... वैसे भी, शिक्षा के बाजार ही बदतर हो जाएं। यहां समस्या यह है कि हमारे पास ऐसे साहित्य की भरमार है जो मध्य वर्ग द्वारा कल्याण को हड़पने की समस्या की ओर संकेत करता है, यह सुझाता है कि अगर सार्विक स्तर पर शिक्षा उपलब्ध करवाई जाए तो वंचितों की तुलना में मध्यम वर्ग को ही अधिक लाभ होगा (टूली, 2000, पृ. 79)

टूली कुछ राज्यों द्वारा प्रभावी व कुशल सार्विक शिक्षा उपलब्ध करवाने में नजर आने वाली असफलता की ओर भी संकेत करते हैं। उनका पसंदीदा उदाहरण भारत का है जहां कम कीमत पर निजी शिक्षण का बाजार इसलिए फैला क्योंकि सरकारी शिक्षण व्यवस्था असफल सिद्ध हुई; पर दक्षिण अफ्रिका, ब्राजील, पेरू, रोमानिया जैसे विकासशील देशों के अनेकानेक उदाहरण भी हैं (टूली, 1999)। भारत में स्कूली शिक्षण पर बाद में लिखे गए अपने पर्चे में टूली बुनियादी शिक्षा पर पब्लिक रिपोर्ट (प्रोब रिपोर्ट) और उस रिपोर्ट में सरकारी तथा निजी स्कूलों की तुलना की दुहाई देते हैं और यह तर्क करते हैं कि भारत को तथा अन्य देशों को नियामन ढीला कर वाउचर व्यवस्था शुरू करनी चाहिए ताकि जो कमी सरकारी व्यवस्था में बचती है उसकी पूर्ति निजी शिक्षण से की जा सके। वे कहते हैं

कि प्रोब रिपोर्ट ने गरीबों की सेवा में रत निजी स्कूलों की और संकेत किया और यह स्वीकारा है कि इन स्कूलों में शराब पीने, संसाधनों का कम उपयोग करने जैसी समस्याएं नहीं मिलीं। गीता किंगडन, जो स्वयं प्रोब रिपोर्ट से जुड़ी थीं, ने आश्चर्यजनक विश्लेषण से इस तथ्य की पुष्टि की कि उत्तर प्रदेश के निजी स्कूल सरकारी स्कूलों की तुलना में अधिक कुशल हैं : मतलब कम लागत के बावजूद उनके परिणाम बेहतर आते हैं। कुछ लोग यह तर्क कर सकते हैं कि यह विश्लेषण निजीकरण का अनुमोदन करता है (यद्यपि स्वयं किंगडन पूरी दृढ़ता से और मुझे लगता है सही ही, ऐसा नहीं करतीं)।

पहले मैं मध्यमवर्ग द्वारा कब्जा करने पर कुछ कहना चाहूंगा। मध्यमवर्ग द्वारा काबिज होने का दावा समान प्रावधान सापेक्ष होता है। मतलब कि यह सच है कि कई सरकारी लाभों का फायदा श्रमिक वर्ग की तुलना में मध्यमवर्ग ही अधिक लेता है क्योंकि सामूहिक स्तर पर दबाव डालने की तथा व्यक्तिगत स्तर पर व्यवस्था से निपटने की क्षमता उनमें अधिक होती है। मतलब कि वे अपने समान हिस्से से अधिक पा लेते हैं। परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि सरकार श्रमिक वर्ग के पक्ष में पुनर्वितरण की कोशिश में असफल रही है। यह भी हो सकता है कि मेहनत-मजदूरी करने वाला वर्ग उतना लाभ नहीं पाता जितना समानता के तहत उसे मिलना चाहिए, पर फिर भी उसे उस स्थिति से कहीं अधिक लाभ मिलता है जब सरकार उनके प्रावधानों में बिल्कुल न जुड़ी हो। मुझे लगता है कि शिक्षा में अधिकांश विकसित देशों में भी ठीक यही स्थिति है। सरकार श्रमिक वर्ग की तुलना में मध्यम वर्ग को अधिक संसाधन जरूर बांटती है, परन्तु क्योंकि ये संसाधन क्रमिक रूप से बढ़ने वाले करों से उपलब्ध करवाए जाते हैं, श्रमिक वर्ग के बच्चे अधिक और मध्यमवर्ग के बच्चों को कम मिल पाता है, बनिस्बत उस स्थिति के जहां सरकार इस दिशा में कुछ भी न करती होती। मैंने अधिकांश विकसित देश इसलिए कहा क्योंकि मैंने कोई हिसाब-किताब नहीं किया है, न ही मुझे यह पता है कि इसमें किस तरह की गणना की जरूरत होगी, पर मैं यह विश्वास करने को तैयार हूं कि संयुक्त राज्य अमरीका एक अपवाद है : क्योंकि वहां अन्य विकसित देशों की तुलना में क्रमिक कर व्यवस्था कम है और स्कूलों को अनुदान में अधिक असमानता है।

दूसरे, मैं जन-चयन अर्थशास्त्र (पब्लिक - चॉयस इकोनॉमिक्स) के बारे में भी कुछ कहना चाहूंगा। जन चयन अर्थशास्त्र एक सशक्त, प्रबोधक, बौद्धिक उपकरण है और मुझे लगता है कि वामदल इसे एक लम्बे अर्से से नकारते रहे हैं। जब कुछ वस्तुओं को उपलब्ध करवाने में राज्य निजी क्षेत्र से खराब सिद्ध हो तो ऐसा अक्सर मुनाफा कमाने की इच्छा (रेंट सीकिंग) के कारण या सरकारों के कारण या उपलब्ध करवाई जा रही वस्तुओं के कारण होता है, जो विभिन्न मामले में भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।

यद्यपि वाम पक्ष जन-चयन विश्लेषण को अक्सर बिल्कुल खारिज करता है, मुझे लगता है कि दक्षिण पक्ष उससे कुछ ज्यादा ही करीबी जताता है। कल्याणकारी राज्यों में सार्वजनिक प्रावधानों के लिए जनता द्वारा चयन की समालोचना, सशक्त होने के बावजूद अपनी व्यावहारिकता में बेहद सीमित भी है। यह मात्र संयोग नहीं कि जन-चयन विश्लेषण अमरीका में विकसित हुआ जहां की राजनीतिक व्यवस्था लाभ कमाने के लिए राज्य के उपयोग की छूट देती है। कांग्रेस में चयनित लोगों को काफी शक्तियां होती हैं और वे अपने जिलों के सबसे अमीर परिवारों के ऋणी भी होते हैं और अपने पद का उपयोग कर फेडरल (केंद्र) सरकार से उन्हें और अधिक लाभ दिलवाने हैं, यों प्रकारान्तर से अपने जिलों को लाभ पहुंचाते हैं। क्योंकि वहां राज्य राजनीतिक दलों में हस्तक्षेप करता है - उदाहरण के लिए उन्हें अपने उम्मीदवार चुनने की शक्ति तक अवरुद्ध कर सकता है, या मतदान तक पहुंच को नाजायज मांगों से सीमित कर सकता है, राजनीतिक दल कमजोर होते हैं और नीति निर्धारण में खास असर नहीं डाल पाते। सो... वहां धौंस से हड़पने की राजनीति हावी रहती है... (पोर्क-बैरल पॉलिटिक्स) खासकर तब, जब कार्यपालिका व विधायिका पर किसी भी गठबंधन का नियंत्रण न हो। ऐसी स्थितियों में आपकी अपेक्षा यह रहती है कि एन्थनी डाउन्स जो कुछ कहते हैं वह सच होगा। इसके विपरीत, ब्रिटिश, स्वीडी व फ्रांसीसी राजनीतिक व्यवस्था लाभ कमाने को अधिक कठिन बनाती है।

विभिन्न राज्य इस अर्थ में भी भिन्न होते हैं कि उनकी नीतियां दरअसल कितनी समतापूर्ण हैं। यह अंतर आंशिक रूप से उनकी कुशलता तथा आंशिक रूप से उनकी मंशा पर आधारित होता है। यहां हम दो तुलनाएं करते हैं।

पहली तुलना द्वितीय विश्व युद्ध के तीन दशक बाद के स्वीडन तथा यूके के बीच है। दोनों ही देशों में लगभग एक समान सामाजिक लोकतांत्रिक (सोश्यल डेमोक्रेटिक) सहमति थी, पर स्वीडन ने अधिक तेजी से परिस्थितियों की समानता हासिल कर ली और ऐसी पुनर्वितरण संस्थाएं निर्मित कीं जो गत दो दशकों के नव-उदारवादी हमले के समक्ष मजबूती से डटी रह पाई हैं। इस अन्तर का स्पष्टीकरण मुझे लगता है, दोनों देशों की सोश्यल डेमोक्रेटिक दलों की विभेदी क्षमता में मिलेगा। समानता हासिल करने में स्वीडिश सफलता में (और संभवतः आर्थिक विकास के हानिकारक प्रभावों से बचने में उसकी सफलता में भी) जो महत्त्वपूर्ण रहा, वह यह था कि सरकार ने साधन परीक्षित (मीन्स टेस्टेड) लाभों तथा उसके साथ व्यक्तियों में आर्थिक रूप से उत्पादक रहने के प्रति जो उत्साहीनता आती है उससे परहेज किया। सार्वजनीन लाभ में अच्छी बात यह है कि वे साधन परीक्षित लाभों से अधिक समतावादी होते हैं (क्योंकि राजनीतिक दबाव उन पर कम होता है) और अधिक कुशल भी।

दूसरी तुलना नीदरलैण्डस् तथा जर्मनी की संयुक्त राज्य अमरीका से करते हैं : अमरीका के बजाए इन दोनों देशों में परिस्थितियों की समानता अधिक है, और यह द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उत्पादकता में किसी दृश्य क्षति के बिना हासिल हो सका है (गुडिन व अन्य, 1999)। पर अमरीकी सरकार ने स्थितियों की समानता या ऐसी किसी भी चीज को लाने का कोई प्रयास नहीं किया : बल्कि उसने जानसुन कर असमान नतीजों को पोषित किया है, जिसे वह (जाहिर है गलती से) स्वस्थ आर्थिक विकास की पूर्वशर्त, मानती है। यहां जो अन्तर वह राजनीतिक इच्छा शक्ति से समझा जा सकता है।

अब मैं भारत के बारे में कुछ कहना चाहूंगा, यद्यपि इससे मेरा यह नियम जरूर टूटेगा कि जिस बारे में मैं जानता नहीं उस बारे में कुछ कहना नहीं चाहिए। भारत परिवर्तनशीलता अभिधारणा (वेरिएबिल्टी थीसिस) का उम्दा उदाहरण है। यद्यपि भारत में साक्षरता की स्तर काफी कम है, उसके कुछ राज्यों में साक्षरता दर बेहद ऊंची भी है, जैसे केरल में। प्रोब रिपोर्ट के लेखकों ने जानबूझकर उन राज्यों को चुना जहां सरकारी शिक्षा व्यवस्था में गंभीर समस्याएं थीं और ये ही वे राज्य भी थे जिनमें निजी स्कूलों के तुलनात्मक रूप से सफल होने की उम्मीद की जा सकती थी।

परन्तु इस कमी को पूरी करने वाले निजी स्कूलों के उदाहरणों की ओर संकेत करने से निजी शिक्षण को व्यापक स्तर पर प्रोत्साहित करने का औचित्य सिद्ध नहीं होता और न ही इससे कई कारणों से नियामन में ढिलाई देने के जैम्स के सुझाव की पुष्टि ही होती है। हां, इससे नियमों को सुधारने की बात को समर्थन अवश्य मिलता है, जो बिल्कुल भिन्न बात है।

अव्वल तो हम निजी स्कूलों संबंधी दावों के कई दृष्टान्तों के आधार पर कोई सामान्यीकरण नहीं कर सकते। सो वामपक्ष निजीकरण के विशिष्ट मामलों की भयानक कथाएं पेश करता है। फिर भी उसके विरुद्ध एक ठोस मामला नहीं बना पाता; इसी प्रकार दक्षिण पक्ष उसकी सफलता गाथाओं को गाकर उसके पक्ष में मामला निर्मित नहीं कर पाता। उदाहरण के लिए, जैसा मैं पहले ही स्पष्ट कर चुका हूं यूके में शिक्षण के क्षेत्र में लाभ कमाने वाली संस्थाओं का व्यापक उपयोग होता है जिससे व्यय बढ़ने की उम्मीद है, यद्यपि अगर रणनीति बना उनका सीमित उपयोग किया जाए तो शिक्षा पर होने वाला खर्च नहीं बढ़ेगा। इसी प्रकार यूके के आरसी तथा सी ऑफ ई स्कूल अन्य स्कूलों की तुलना में अधिक लागत-प्रभावी (कॉस्ट इफैक्टिव) हैं। ये स्कूल स्वैच्छिक मानव पूंजी की सीमित आपूर्ति का उपयोग करते हैं जो कुछ टीकाकारों के अनुसार समाप्ति की कगार पर है। यह तथ्य कि ये स्कूल फिलहाल लागत प्रभावी हैं उनको फैलाने का औचित्य नहीं देता।

दूसरी बात यह है कि निजी बाजार कुशलता से काम करे इसके लिए सुचारू रूप से काम करने वाले राज्य की दरकार होती है। यह भूलना बड़ा आसान है कि यूके तथा यूएस में जहां सशक्त एन्टी ट्रस्ट नियम हैं; सावधानी से बने और लागू किए जाने वाले कॉपीराइट तथा पेटेंट कानून हैं; राजनीतिक आजादी है जो बाजारों में सूचना आदान-प्रदान को सुनिश्चित करती है; बुनियादी स्वास्थ्य व सुरक्षा के नियम हैं; अभ्रष्ट पुलिस व अन्य सरकारी अधिकारी हैं। पर ठीक यही बातें रूस, जिम्बाम्बे या दक्षिण अफ्रीका में भूलना असंभव है। सो अगर निजी शिक्षण को सही प्रकार से चलाना हो तो जरूरी यह होगा कि दरअसल सरकारी शिक्षा व्यवस्था के विरोधी सरकार को जितना निकम्मा मानते हैं, वह उससे अधिक कुशलता से तथा सुचारू रूप से काम करे।

तीसरे, विभिन्न राज्य अपनी कार्य कुशलता में अलग-अलग होते हैं, उनके ढांचे व राजनीतिक इच्छाशक्ति में भी अन्तर होता है। भारत में साक्षरता दर और जन कल्याण का स्तर एक से दूसरे राज्य में भिन्न है। और यह अंतर संपन्नता से समझाया नहीं जा सकता। केरल में महिला एवं पुरुष साक्षरता दरें पश्चिमी लोकतंत्र में जैसी उम्मीद की जाए वैसी ही हैं। यह स्थिति निरंतर सुदृढ़ राजनीतिक इच्छाशक्ति को परिलक्षित करती है, न कि वहां की सरकार के स्वरूप को, जो भारत के दूसरे राज्यों से इतनी भिन्न नहीं है। विकासशील दुनिया पर नजर डालें तो गौर कर पाएंगे कि क्यूबा की सरकार अपनी तमाम कमियों, विषम परिस्थितियों और भ्रष्ट राजनीतिक वर्ग के बावजूद अपने नागरिकों को उच्च स्तर की शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध करवाने में सफल रही है।

चौथे, याद रखें कि न्याय सबसे विपन्न लोगों की शिक्षा के विषय में भारी मांगें रखता है। वह कहता है कि सामाजिक वर्ग की पृष्ठभूमि किसी हाल में शैक्षिक उपलब्धि की संभावनाओं को प्रभावित नहीं करे। और यद्यपि प्रोब रिपोर्ट इस बात की पुष्टि करती है कि निजी स्कूल तुलनात्मक रूप से कम लागत वाले होते हैं, वह यह भी कहती है कि निजी शिक्षण अधिकांश गरीब माता-पिता की पहुंच से बाहर रहता है (105) और यद्यपि निजी स्कूलों में पढ़ने वाले लगभग आधे बच्चे अनुसूचित या अन्य पिछड़ी जातियों के होते हैं ये परिवार अक्सर अपने एक ही बच्चे को, सामान्यतः लड़के को, ही निजी स्कूल में भेज पाते हैं (103)। साथ ही यद्यपि गरीबों की भी निजी स्कूलों तक पहुंच है, यह पहुंच प्राथमिक स्कूलों तक ही सीमित है। सैकण्डरी स्कूलों की संख्या कम है और वे अधिक महंगे भी हैं, तथा वहां पढ़ने वाले छात्रों की सामाजिक-आर्थिक छवि प्राथमिक स्कूलों की तुलना में अधिक सम्पन्न है। यह सच है कि निजी स्कूल गरीब ग्राहकों को आकर्षित करने में रुचि रखते हैं पर मुश्किल यह है कि उनके पास इतने संसाधन नहीं होते। जो माता-पिता अपने बच्चों को निजी स्कूलों में भेजने पर खर्च करते हैं वे इस बात से प्रसन्न भी हो सकते हैं कि वे सक्षम गरीब बच्चों की उपस्थिति में कुछ

योगदान दे रहे हैं, जिससे उनके बच्चे का शैक्षिक अनुभव भी समृद्ध बनेगा, पर जिन बच्चों को सुधारात्मक शिक्षण की आवश्यकता है उसमें अंशदान देने का उनके लिए कोई कारण नहीं है। न ही निजी क्षेत्र उन कारणों से निपट सकता है जिनके चलते माता-पिता अपनी बेटियों की शिक्षा में कोई निवेश नहीं करते। इस निवेश से उन्हें बाद में कोई लाभ की उम्मीद जो नहीं होती। या जिन कारणों के चलते वे अपने बच्चों को कम उम्र में ही श्रम बाजार में भेज देते हैं (परिवार की अति दयनीय आय में कुछ जोड़ने)। असमानता के इन विविध स्रोतों को तो राज्य की सरकार ही संबोधित कर सकती है। उदाहरण के लिए बाल श्रम पर प्रतिबंध लगा कर या बालिका शिक्षा में निवेश करने पर माता-पिता को वित्तीय प्रोत्साहन देकर (उदाहरण उत्तरप्रदेश का ईजीएस कार्यक्रम)।

निजी स्कूलों में अगर गरीब बच्चों में भी जो तुलनात्मक रूप से साधन संपन्न हों, उनका प्रतिनिधित्व भी हो सके तो यह शैक्षिक समानता की यथावत स्थिति में कुछ सुधार तो लाएगा (बनिस्बत उस स्थिति के जहां केवल खराब सरकारी स्कूल ही हों, क्योंकि गरीबतम की तुलना में कुछ साधन सम्पन्न होने पर भी ये लोग समग्र रूप से साधन सम्पन्न नहीं हैं। परन्तु शैक्षिक समानता की कोई दूरगामी रणनीति ऐसी किसी व्यवस्था से संतुष्ट नहीं हो सकती जो कुछ के सिवाय शेष सभी गरीबों को (जिनमें प्रायः सभी लड़कियां हों) शिक्षा से वंचित रखे। प्रोब रिपोर्ट हमें यह चेतावनी देती है कि निजी स्कूलों के विस्तार से यह खतरा भी उत्पन्न होता है कि सरकारी स्कूली व्यवस्था कमजोर हो जाए। जब तुलनात्मक रूप से सम्पन्न माता-पिता अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों से हटा कर निजी स्कूलों में डालते हैं तो सरकारी स्कूलों को सुधारने में माता-पिता का जो दबाव है वह भी कम हो जाता है (106)।

क्या वाउचर इस समस्या का समाधान कर सकते हैं, जैसा टूली हमें सूचित करते हैं ? यह निर्भर करता है। ऐसी स्थिति में तो नहीं जैसी फिलहाल है, जब माता-पिता बेटियों के बजाए केवल बेटों को शिक्षित करने में अधिक रुचि लेते हों : माता-पिता के प्रति जवाबदेही भी समानता को बढ़ा नहीं सकती। जब वे स्वयं असमान आचरण करें और उनकी तात्कालिक भौतिक लाभ में रुचि हो जिसके लिए वे अपने बच्चों को कच्ची उम्र में काम पर भेज दें, और उनकी शिक्षा दीक्षा में निवेश करने के दूरगामी लाभ की फिक्र न करें (देखें प्रोब रिपोर्ट का पृष्ठ 21 जिसमें बालिका शिक्षा के प्रति माता-पिता की उदासीनता का स्पष्टीकरण दिया गया है)।

अब इन तमाम स्थितियों से जूझने का काम शायद कुशल सरकारें कर सकती हैं। पर जो अक्षम सरकारें स्वस्थ व साक्षर आबादी के लिए बुनियादी सहयोग भी न जुटा सकें वे यह सब करने की स्थिति में भी नहीं होंगी। संभव है कि वे लाभखोरी को छूट दे दें, भ्रष्ट प्रक्रियाओं से अनुबन्ध आवंटित करें, कम्पनियों को सुरक्षा देने में मनमाना आचरण करें, आदि-आदि। सरकार की अकुशलता के उपचार के रूप में निजीकरण की पैरवी करने वालों के समक्ष एक दुविधा है, वह यह कि निजीकरण तब कारगर हो ही नहीं सकेगा जब तक सरकारी कुशलता से कार्य न करे। सरकारी अक्षमता की बुनियादी समस्या निजी स्कूलों और वाउचर कार्यक्रमों से सुलझाई नहीं जा सकती। परन्तु अगर शैक्षिक समानता लानी हो तो इसका समाधान भी करना ही होगा।

एक अंतिम बात जो इस विषय में चर्चा करते समय मैं हमेशा कहता हूं, पर इसलिए क्योंकि वह हमेशा सच है। शैक्षिक समानता सामाजिक न्याय का बेहद आवश्यक सिद्धान्त है : जो समाज इसे उपलब्ध करवाने में असफल होता है वह यह सुनिश्चित करने में भी असफल रहता है कि असमान रूप से वितरित लाभों के लिए स्पर्धा हो। मैं इस अर्थ में समतावादी नहीं हूं कि मैं यह सोचता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति को बराबर की राशि मिलनी चाहिए - मुझे नहीं लगता कि कोई भी ऐसे सोचता है। पर मैं इस अर्थ में समतावादी हूं कि मानूं कि असमान रूप से वितरित होने वाली जो भी वस्तु हो उसे पाने के लिए सबको समान अवसर मिले। जो समाज शैक्षिक असमानता की अनुमति देता है वह इसी अर्थ में असफल रहता है। शैक्षणिक समानता-असमानता से सुसंगति में भी पनप सकती है। पर यह बात गरीबी के साथ सुसंगत नहीं है। और जो समाज बच्चों को गरीबी में बढ़ने देता है वह इस कारण शैक्षिक असमानता और गहन अन्याय का भी अनुमोदन करता है। आप शिक्षा नीति के साथ चाहे जितना भी खिलवाड़ कर लें, हम जो कुछ भी करें व वह गरीबी का मुआवजा नहीं हो सकता। कुछ समाजों ने सचेतन रूप से गरीबी को न्यूनतम रखने का निर्णय लिया है - मैं स्कैन्डिनेविया के सामाजिक लोकतंत्रों की बात सोचता हूं। उन्होंने अच्छा काम किया है। दूसरों ने तय किया है कि वे ऐसा नहीं करेंगे - यहां मैं संयुक्त राज्य अमरीका तथा यूके की बात सोचता हूं। उन्होंने भी अच्छा किया है खासकर अमरीका में, उनका यह राजनीतिक निर्णय भी कि वे असमानताओं को और तीव्र बनाएंगे, चाहे उससे गरीबी और क्यों न बढ़े, सफल रहा, ठीक ऐसा ही 1980 में थैचर क्रांति के दौरान हुआ था। राजनैतिक कृत्य अनैच्छिक नतीजों आदि की चिंताओं से घिरे होते हैं और चीजें हमेशा योग्यतानुसार नहीं चलतीं। पर यह आश्चर्यजनक है कि जिन सरकारों की वास्तविक राजनैतिक इच्छाशक्ति होती है, वे क्या कुछ नहीं हासिल कर लेतीं। ◆

भाषान्तर : पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा